नीतिशतकम्

डॉ. मेहुल शाह
रामजी रवजी लालन महाविद्यालयः, भुज

प्रसह्य मणिमुद्धरेन्मकरवक्त्रदन्ष्ट्रान्तरात् ।
समुद्रमपि संतरेत् प्रचलदूर्मिमाला कुलम् ।
भुजंगमपि कोपितं शिरसि पुष्पवद्धारयेत् ।
न तु प्रतिनिविष्टमूर्खजन चित्तमाराधयेत् ।।४।।

मगर के दाढ़ों में दबी हुई मणि चाहे निकाली जा सके, चाहे उन्नत लहरों से उलझते हुए गहन समुद्र को तैर कर पार किया जा सके और चाहे क्रुद्ध हुए सर्प को पकड़ कर शिर पर धारण किया जा सके, परन्तु मूर्ख पुरुष के किसी वस्तु पर जमे हुए मन को वहाँ से हटाना कठिन ही है ।४।

लभेत सिकतासु तैलमपि यत्नतः पीडयन्
पिबेच्च मृगतृष्णिकासु सलिलं पिपासार्दितः ।
कदाचिदपि पर्यटन्शशविषाणमासादयेन्
न तु प्रतिनिविष्टमूर्खजनचित्तमाराधयेत् ॥ ५॥

यत्न करने पर चाहे बालू से तेल निकाल लिया जाय, चाहे प्यासा मनुष्य मृगतृष्णा के जल से अपनी प्यास को बुझा ले और चाहे ढूँढने पर खरगोश का सींग भी मिल जाय, परन्तु किसी वस्तु पर टिके हुए मूर्ख मनुष्य के मन को उस वस्तु से हटाना असंभव है ।५।

शशी दिवसधूसरो गलितयौवना कामिनी
सरो विगतवारिजं मुखमनक्षरं स्वाकृतेः ।
प्रभुर्धनपरायणः सततदुर्गतः सज्जनो नृपाङ्गणगतः
खलो मनसि सप्त शल्यानि मे ॥ ५६॥

दिन का धूमिल चन्द्र, यौवनहीना नारी, कमलविहीन सरोवर, बुद्धिहीन सुन्दर पुरुष, कृपण स्वामी, दुर्गति-ग्रस्त सज्जन और राजभवन में दुष्ट मनुष्य का वास, यह सातों काँटे के समान हैं ।५६।

मणिः शाणोल्लीढः समरविजयी हेतिनिहतो
मदक्षीणो नागः शरदि सरितः श्यानपुलिनाः ।
कलाशेषश्चन्द्रः सुरतमृदिता बालवनिता
तनिम्ना शोभन्ते गलितविभवाश्चार्थिषु नराः ॥ ४४॥

शान पर खराद किया हुआ मणि, शस्त्रों से आहत समर-विजयी, मद का स्राव करता हुआ हाथी, शरद ऋतु में किंचित् सूखी हुई नदी, कला से शेष चन्द्रमा, कामकेलि में मर्दिता बालवनिता और शुभकर्म में व्यय करके निर्धन हुआ राजा, इनकी शोभा कृशता में भी होती है ।४४।

विपदि धैर्यमथाभ्युदये क्षमा सदसि वाक्पटुता युधि विक्रमः ।
यशसि चाभिरुचिर्व्यसनं श्रुतौ प्रकृतिसिद्धमिदं हि महात्मनाम् ॥ ६३॥

विपत्ति में धैर्य, अभ्युदय में क्षमा-भाव, सभा में वाक्पटुता, युद्ध में पराक्रम, यश में अभिरुचि, शास्त्र-श्रवण में चित्त,महात्मा पुरुषों के यह स्वाभाविक गुण हैं ।६३।

निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु व यथेष्टम् ।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा
न्याय्यात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः ॥ ८४॥

नीतिनिपुण मनुष्य निन्दा करे या स्तुति, लक्ष्मी आये या चली जाय, मृत्यु आज ही हो अथवा युगान्तर में, परन्तु धीरजवान् पुरुष न्याय मार्ग से पीछे कभी नहीं हटते ।८४।

मनसि वचसि काये पुण्यपीयूषपूर्णाः
त्रिभुवनमुपकारश्रेणिभिः प्रीणयन्तः ।
परगुणपरमाणून् पर्वतीकृत्य नित्यं
निजहृदि विकसन्तः सन्ति सन्तः कियन्तः ॥ ७९॥

जिनके मन, वचन और काया में पुण्यमय पीयूष भरा है, जिन्होंने परोपकार से त्रिभुवन को प्रसन्न किया है और जिन्होंने दूसरे के अल्प से भी अल्प गुण को पर्वत के समान बढ़ा कर प्रसन्नता प्राप्त की है, ऐसे सन्त पुरुष संसार में कितने हैं ?।७९।

इतः स्वपिति केशवः कुलमितस्तदीयद्वीषा-
मितश्च शरणार्थिनां शिखरिणां गणाः शेरते ।
इतोऽपि वडवानलः सह समस्तसंवर्तकै-
रहो विततमूर्जितं भारसहं च सिन्धोर्वपुः ॥ ७७॥

समुद्र में एक ओर भगवान् विष्णु शयन करते हैं तो दूसरी ओर उनके शत्रु, एक ओर अपनी रक्षा की आकांक्षा से पर्वतों के समूह सोते हैं तो दूसरी ओर प्रलय काल की सम्वर्ताग्नि को साथ लिए हुए बड़वानल वृद्धि पर है । अहो, समुद्र कैसा महान् बलवान और भारसहन में समर्थ है, इसी प्रकार सज्जन भी होते हैं ।७७।

दौर्मन्त्र्यान्नृपतिर्विनश्यति यतिः सङ्गात् सुतो लालनाद्
विप्रोऽनध्ययनात् कुलं कुतनयाच्छीलं खलोपासनात् ।
ह्रीर्मद्यादनवेक्षणादपि कृषिः स्नेहः प्रवासाश्रया
न्मैत्री चाप्रणयात् समृद्धिरनयात् त्यागः प्रमादाद्धनम् ॥ ४२॥

बुरे मन्त्रियों से राजा का, कुसंगति से योगी पुरुष का, लाड़ से पुत्र का, अध्ययन न करने से ब्राह्मण का, कुपुत्र से कुल का और खलों की सेवा से शील का नाश होजाता है ।४२।

जाड्यं ह्रीमति गण्यते व्रतरुचौ दम्भः शुचौ केतवं,
शूरे निर्घृणता मुनौ विमतिता दैन्यं प्रियलापिनि।
तेजस्विन्यवलिप्तता मुखरता वक्तर्यशक्तिः स्थिरे,
तत्को नाम गुणो भवेत्स गुणिनां यो दुर्जनैर्नाङ्कितः।। ५४ ।।

लज्जावानों में जड़ता, व्रत करने वालों में दम्भ पवित्र चित्त वालों में कपट वीरों में दयाहीनता, मुनियों में बुद्धि राहित्य, मधुर भाषियों में दैन्य, तेजस्वियों में अवलिप्तता, वक्ताओं में मुखरता और स्थिर चित्त वालों में आलस्य का होना कह कर दुर्जन पुरुष गुणियों में ऐसा कौन-सा गुण है जिसमें दोष न निकालते हों ।५४।

जातिर्यातु रसातलं गुणगणैस्तत्राप्यधो गम्यतां शीलं
शैलतटात्पतत्वभिजनः सन्दह्यतां वह्निना ।
शौर्ये वैरिणि वज्रमाशु निपतत्वर्थोऽस्तु नः केवलं
येनैकेन विना गुणास्तृणलवप्रायाः समस्ता इमे ॥ ३९॥

जाति चाहे रसातल में क्यों न चली जाय, श्रेष्ठ गुणगण भी अधोगामी क्यों न होजाँय, शीलता पर्वत से शिला के पतित होने के समान क्यों न गिर जाय, परिवारीजन अग्नि में क्यों न भस्म होजाँय, शत्रुरूपी शूरता पर वज्रपात क्यों न होजाय, परन्तु हमें तो धन से ही प्रयोजन है, क्योंकि धन के बिना सभी गुण तृण के तुल्य ही हैं ।३६।

सम्पत्सु महतां चित्तं भवत्युत्पलकोमलम् ।
आपत्सु च महाशैलशिलासङ्घातकर्कशम् ॥ ६६॥

महात्माओं का चित्त सम्पत्ति मिलने पर कमल के समान कोमल तथा आपत्ति पड़ने पर पर्वत की शिला के समान अत्यन्त कठोर होता है ।६६।

दुर्जनः परिहर्तव्यो विद्ययालङ्कृतोऽपि सन् ।
मणिना भूषितः सर्पः किमसौ न भयङ्करः ॥ ५३॥

दुर्जन विद्यावान है तो भी त्याग देने योग्य है। क्या कोई मणि से अलंकृत हुए सर्प में भयंकरता नहीं होती ।५३।

क्षीरेणात्मगतोदकाय हि गुणा दत्ताः पुरा तेऽखिलाः
क्षीरोत्तापमवेक्ष्य तेन पयसा स्वात्मा कृशाणौ हुतः ।
गन्तुं पावकमुन्मनस्तदभवद् दृष्ट्वा तु मित्रापदं युक्तं
तेन जलेन शाम्यति सतां मैत्री पुनस्त्वीदृशी ॥ ७६॥

जल के साथ मिले हुए दुग्ध ने उसे अपने सभी गुग प्रदान करके मैत्री दृढ़ की। फिर जल ने दुग्ध को जलता हुआ देखा तो उसे बचाने के लिए स्वयं को ही अग्नि में होम कर दिया। जल की यह दशा देख कर दूध ने भी अग्नि की ओर प्रयाण कर दिया, तब जल ने अपने शीतल छीटों से मित्र दुग्ध को स्थिर किया और तभी शान्त हो सका। अहो, सज्जन पुरुषों की मित्रता ऐसी ही होती है।७६।

स्वल्पस्नायुवसावशेषमलिनं निर्मांसमप्यस्थिकं श्वा
लब्ध्वा परितोषमेति न तु तत्तस्य क्षुधाशान्तये । सिंहो
जम्बुकमङ्कमागतमपि त्यक्त्वा निहन्ति द्विपं सर्वः
कृच्छ्रगतोऽपि वाञ्छति जनः सत्वानुरुपं फलम् ॥ ३०॥

स्वल्प स्नायु, चर्बी आदि तथा मांस-रहित अस्थि को प्राप्त करके प्रसन्न तो होता है, परन्तु उससे उसकी भूख शान्त नहीं हो सकती। सिंह भी पास आये हुए स्यार को छोड़ कर हाथी का ही वध करता है। इस प्रकार कष्टमय दशा को प्राप्त होकर भी सब जीव अपनी शक्ति के अनुसार ही फल प्राप्त करने की इच्छा रखते हैं ।३०।

पापान्निवारयति योजयते हिताय
गुह्यं निगूहति गुणान् प्रकटीकरोति ।
आपद्गतं च न जहाति ददाति काले
सन्मित्रलक्षणमिदं निगदन्ति सन्तः ॥ ७३ ॥

अपने मित्र के पाप कर्मों का निवारण करना, हित के कार्यों में युक्त करना, उसकी गुप्त बातों को छिपाये रखना, उसके गुणों को प्रकट करना, उसका साथ कभी न छोड़ना और समय उपस्थित होने पर उसे सहायता करना, सन्तजनों ने यह सब लक्षण श्रेष्ठ मित्र के बताये हैं ।७३।

मृगमीनसज्जनानां तृणजलसन्तोषविहितवृत्तिनाम् ।
लुब्धकधीवरपिशुना निष्कारणवैरिणो जगति ॥ ६१॥

मृग और मछली क्रमशः घास खाकर और जल पीकर रहते हैं, तो भी शिकारी और मछेरे उससे द्वेष रखते हैं। वैसे ही सज्जन पुरुषों से दुर्जन पुरुष अकारण ही वैर रखते हैं ।६१।

सन्तप्तायसि संस्थितस्य पयसो नामापि न ज्ञायते
मुक्ताकारतया तदेव नलिनीपत्रस्थितं राजते ।
स्वात्यां सागरशुक्तिमध्यपतितं तन्मौक्तिकं जायते
प्रायेणाधममध्यमोत्तमगुणः संसर्गतो जायते ॥ ६७॥

तपते हुए लोहे पर पड़ने वाले जल का नाम भी नहीं जाना जाता अर्थात् चिन्ह भी शेष नहीं रहता, परन्तु वही जल कमल के पत्तों पर मोती के आकार का होजाता है। यदि वही जल स्वाति नक्षत्र में समुद्र की शुक्तियों पर पड़ जाय तो मोती बन जाता है। इससे यही विदित होता है कि शरीर-धारियों के अधम, मध्यम और उत्तम गुण संसर्ग से ही उत्पन्न होते हैं।६७।

मौनान्मूकः प्रवचनपटुर्वातुलो जल्पको वा
धृष्टः पार्श्वे वसति च सदा दूरतश्चाप्रगल्भः ।
क्षान्त्या भीरुर्यदि न सहते प्रायशो नाभिजातः
सेवाधर्मः परमगहनो योगिनामप्यगम्यः ॥ ५८॥

यदि सेवक मौन रहे तो गूँगा, वाक्पटु हो तो बकवादी, समीप रहे तो ढीठ और दूर रहे तो मूर्ख कहलाता है। यदि क्षमाशील हो तो उसे भीरु और असहनशील हो तो कुलहीन कहते हैं। अभिप्राय यह है कि सेवा धर्म अत्यन्त गहन है, जो कि योगियों को भी अगम्य होता है ।५८।

नम्रत्वेनोन्नमन्तः परगुणकथनैः स्वान् गुणान् ख्यापयन्तः
स्वार्थान् सम्पादयन्तो विततपृथुतरारम्भयत्नाः परार्थे ।
क्षान्त्यैवाक्षेपरुक्षाक्षरमुखरमुखान् दुर्जनान् दूषयन्तः
सन्तः साश्चर्यचर्या जगति बहुमताः कस्य नाभ्यर्चनीयाः ॥ ७०॥

जो नम्र रहकर उन्नति करते हैं, जो पराये गुणों का वर्णन करते हुए अपने गुणों को व्यक्त करते हैं, जो परोपकार करते हुए अपना भी कार्य-साधन करते हैं, जो दुर्जनों की निन्दित और कठोर वाणी से युक्त मुख को क्षमा से ही दूषित करते हैं। इस प्रकार के उन आश्चर्यजनक दिनचर्या वाले सन्त पुरुषों को संसार में पूजनीय कौन नहीं मानता ? ।७०।

वाञ्छा सज्जनसङ्गमे परगुणे प्रीतिर्गुरौ नम्रता
विद्यायां व्यसनं स्वयोषिति रतिर्लोकापवादाद्भयम् ।
भक्तिः शूलिनि शक्तिरात्मदमने संसर्गमुक्तिः खले
येष्वेते निवसन्ति निर्मलगुणास्तेभ्यो नरेभ्यो नमः ॥ ६२॥

सज्जनों के संग की इच्छा, पराये गुणों से प्रेम, गुरुजनों के समक्ष नम्रता, विद्या में अनुराग, निज पत्नी से प्रीति, लोक-निन्दा से भय, शिव की भक्ति, इन्द्रियदमन की शक्ति रखना और दुष्टों की संगति का परित्याग करना, यह श्रेष्ठ गुण जिनमें हैं, उन सज्जनों को नमस्कार ।६२।

तृष्णां छिन्धि भज क्षमां जहि मदं पापे रतिं मा कृथाः
सत्यं ब्रूह्यनुयाहि साधुपदवीं सेवस्व विद्वज्जनम् ।
मान्यान् मानय विद्विषोऽप्यनुनय प्रख्यापय प्रश्रयं
कीर्तिं पालय दुःखिते कुरु दयामेतत् सतां चेष्टितम् ॥ ७८॥

तृष्णा का त्याग करो, क्षमा को अपनाओ, अहंकार को छोड़ दो, पाप से चित्त हटाओ, सत्य बोलो, सज्जनों के पदानुयायी बनो, विद्वानों की सेवा करो, मान्य पुरुषों का मान करो, विद्वेषी को भी प्रसन्न रखो, अपने गुणों को व्यक्त करो, यह सभी लक्षण सत्पुरुषों के हैं ।७८।

रत्नैर्महार्हैस्तुतुषुर्न देवा
न भेजिरे भीमविषेण भीतिम् ।
सुधां विना न प्रययुर्विरामं
न निश्चितार्थाद्विरमन्ति धीराः ॥ ८१॥

समुद्र मन्थन के समय देवगण महान् रत्नों को पाकर भी प्रसन्न नहीं हुए, भयंकर विष की प्राप्ति से भयभीत न हुए और जब तक मन्थन न होगया उस कार्य से नहीं हटे । तात्पर्य यह है कि विद्वान् और धीर पुरुष अभीष्ट की प्राप्ति हुए बिना आरम्भ किये हुए कार्य को नहीं छोड़ते ॥८१॥

प्रदानं प्रच्छन्नं गृहमुपगते सम्भ्रमविधिः
प्रियं कृत्वा मौनं सदसि कथनं चाप्युपकृते ।
अनुत्सेको लक्ष्म्यामनभिभवगन्धाः परकथाः
सतां केनोद्दिष्टं विषममसिधाराव्रतमिदम् ॥ ६४॥

दान को गोपनीय रखना, गृह पर आगत का स्वागत-सत्कार करना, परोपकार करके चुप रहना, किसी अन्य द्वारा किये हुए उपकार को सभा में कहना, धन प्राप्त होने पर गर्व न करना, दूसरों की चर्चा में निन्दा-भाव न लाना यह तलवार की धार पर चलने के समान कठोर व्रत किसने बताया है ? ।६४।

भवन्ति नम्रास्तरवः फलोद्गमै-
र्नवाम्बुभिर्दूरविलम्बिनो घनाः ।
अनुद्धताः सत्पुरुषाः समृद्धिभिः
स्वभाव एवैष परोपकारिणाम् ॥ ७१॥

जैसे फल लग जाने पर वृक्ष झुक जाते हैं, जैसे नवीन जल से भरे हुए मेघ पृथिवी पर गिरते हैं, वैसे ही समृद्धि को प्राप्त हुए सत्पुरुष भी झुक जाते है। क्योंकि परोपकारियों का स्वभाव ही ऐसा होता है ।७१।

पद्माकरं दिनकरो विकचीकरोति
चन्द्रो विकासयति कैरवचक्रवालम् ।
नाभ्यर्थितो जलधरोऽपि जलं ददाति
सन्तः स्वयं परहिते विहिताभियोगाः ॥ ७४॥

बिना याचना किये ही सूर्य कमलों को खिलाता और चन्द्रमा कुमुदिनी को विकसित करता है। मेघ भी स्वयं ही जल की वर्षा करता है, क्योंकि सत्पुरुष बिना किसी की प्रार्थना के ही परोपकार में तत्पर रहते हैं ।७४।

वहति भुवनश्रेणिं शेषः फणाफलस्थितां
कमठपतिना मध्ये पृष्ठं सदा च धार्यते ।
तमपि कुरुते क्रोधाधीनं पयोधिरनादरा-
दहह महतां निःसीमानश्चरित्रविभूतयः ॥ ३५॥

शेष नाग अपने फण पर ही चौदह भुवनों को धारण किये रहते हैं, परन्तु कच्छप ने उन शेष नाग को भी अपनी पीठ पर धारण कर रखा है। वह कच्छप भी समुद्र की गोद में अनादर पूर्वक धारण किया हुआ है। अहो ! महान् पुरुषों के चरित्र की महिमा भी असीमित होती है।३५।

लोभश्चेदगुणेन किं पिशुनता यद्यस्ति किं पातकैः
सत्यं चेत्तपसा च किं शुचि मनो यद्यस्ति तीर्थेन किम् ।
सौजन्यं यदि किं गुणैः सुमहिमा यद्यस्ति किं मण्डनैः
सद्विद्या यदि किं धनैरपयशो यद्यस्ति किं मृत्युना ॥ ५५॥

लोभ है तो किसी अन्य दुर्गुण की क्या आवश्यकता ? यदि पिशुनता है तो पापों का क्या प्रयोजन ? यदि सत्य है तो तप से क्या लाभ ? यदि मन में पवित्रता है तो तीर्थों में जाने का क्या उद्देश्य ? यदि सौजन्य है तो अन्य गुणों से क्या कार्य ? यदि यश है तो अन्य भूषण से क्या अपेक्षा ? यदि सद्विद्या है तो धन का क्या अभिप्राय ? यदि अपयश है तो मृत्यु की क्या कामना ? ।५५।

जाड्यं धियो हरति सिञ्चति वाचि सत्यं
मानोन्नतिं दिशति पापमपाकरोति ।
चेतः प्रसादयति दिक्षु तनोति कीर्तिं
सत्सङ्गतिः कथय किं न करोति पुंसाम् ॥ २३॥

सज्जनों की संगति जड़ता को दूर करती, वाणी को सत्य से भरती, मान की वृद्धि करती, पापों को नष्ट करती, चित्त को प्रसन्न करती और सब दिशाओं में कीर्ति को फैलाती है। कहो, वह मनुष्य के हितार्थ क्या नहीं करती ? ।२३।

वरं पक्षच्छेदः समदमघवन्मुक्तकुलिश-
प्रहारैरुद्गच्छद्बहुलदहनोद्गारगुरुभिः ।
तुषाराद्रेः सूनोरहह पितरि क्लेशविवशे
न चासौ सम्पातः पयसि पयसां पत्युरुचितः ॥ ३६॥

अग्नि की असह्य ज्वाला वाले वज्र के इन्द्र द्वारा प्रहार करने से हिमालय के पुत्र मैनाक के परों का काटना अच्छा था, परन्तु यह अच्छा नहीं था कि उसने अपने पिता को संकट ग्रस्त छोड़ कर समुद्र के आश्रय में अपनी प्राण-रक्षा की ।३६।

परिक्षीणः कश्चित्स्पृहयति यवानां प्रसृतये
स पश्चात् सम्पूर्णः कलयति धरित्रीं तृणसमाम् ।
अतश्चानैकान्त्याद्गुरुलघुतयाऽर्थेषु धनिना-
मवस्था वस्तूनि प्रथयति च सङ्कोचयति च ॥ ४५॥

दरिद्र रहने पर जो मनुष्य एक अंजुली मात्र जौ की कामना करता है, वही धनवान होने पर सम्पूर्ण पृथिवी को तृण के समान समझता है। इस प्रकार यह दोनों अवस्थाएँ मनुष्यों को छोटा या बड़ा बना देतीं और वस्तुओं का विस्तार और संकोच किया करती हैं ॥४५॥

हर्तुर्याति न गोचरं किमपि शं पुष्णाति यत् सर्वदा-
ऽप्यर्थिभ्यः प्रतिपाद्यमानमनिषं प्राप्नोति वृद्धिं पराम् ।
कल्पान्तेष्वपि न प्रयाति निधनं विद्याख्यमन्तर्धनं
येषां तान्प्रति मानमुज्झत नृपाः कस्तैः सह स्पर्धते ॥ १६॥

विद्या रूप गुप्त धन को चोर नहीं देख सकता और वह धन सदा श्रेय की ही वृद्धि करता है। याचकों को देने पर भी बढ़ता और प्रलय होने पर भी नष्ट नहीं होता। हे नृपगण ! उन महा-कवियों के प्रति अभिमान न करो, उनसे स्पर्धा करने वाला ही कौन है ?।१६।

क्षुत्क्षामोऽपि जराकृशोऽपि शिथिलप्रायोऽपि कष्टां दशा
मापन्नोपि विपन्नदीधितिरपि प्राणेषु नश्यत्स्वपि ।
मत्तेभेन्द्रविभिन्नकुम्भकवलग्रासैकबद्धस्पृहः
किं जीर्णं तृणमत्ति मानमहतामग्रेसरः केसरी ॥ २९॥

क्षुधा से कृश शरीर, शिथिलप्रायः जरावस्था के कारण बलहीन और कष्टमय दशा को प्राप्त हुआ सिंह तेज-रहित होने पर भी मत्त गजेन्द्र के मस्तक का भक्षण करने की इच्छा रख कर कभी शुष्क और जीर्ण घास को खा सकता है ?।२९।

क्वचित् भूमौशय्या क्वचिदपि च पर्यङ्कशयनः
क्वचिच्छाकाहारः क्वचिदपि च शाल्योदनरुचिः ।
क्वचित् कन्थाधारी क्वचिदपि च दिव्याम्बरधरो
मनस्वी कार्यार्थी न गणयति च दुःखं न च सुखम् ॥ ८२॥

कभी भूमि पर सोते हैं तो कभी पलंग पर, कभो शाक का आहार करते हैं तो कभी शालि का ओदन (चावल का भात) भक्षण करते हैं, कभी गुदड़ी पहन कर दिन व्यतीत करते हैं तो कभी दिव्य वस्त्र पहनते हैं, इस प्रकार मनस्वी कार्यार्थी जब कार्य करने लगते हैं तो सुख, दुःख में भेद नहीं मानते ।८२।

कुसुमस्तबकस्येव द्वयी वृत्तिर्मनस्विनः ।
मूर्ध्नि वा सर्वलोकस्य विशीर्येत वनेऽथवा ॥ ३३॥

पुष्पों के गुच्छे के समान मनस्वी पुरुषों की दो गतियाँ ही हैं—सब के शिर पर प्रतिष्ठित होना अथवा वन में ही मुर्झा कर नष्ट होजाना है ।३३।

नमस्यामो देवान्ननु हतविधेस्तेऽपि वशगा
विधिर्वन्द्यः सोऽपि प्रतिनियतकर्मैकफलदः ।
फलं कर्मायत्तं यदि किममरैः किञ्च विधिना
नमस्तत्कर्मभ्यो विधिरपि न येभ्यः प्रभवति ॥ ९५॥

हम जिन देवयाओं को नमस्कार करते हैं, वे देवता भी विधाता के वश में पड़े हुए हैं। इसलिए हम भी विधाता को नमस्कार करते हैं, जो कि हमारे कर्मों के अनुसार ही फल देता है। जब कर्म के अनुसार ही फल मिलना है, तब हमें देवताओं से और विधाता से ही क्या प्रयोजन ? इसलिए उस कर्म को ही नमस्कार करना चाहिए, जिस पर विधाता का भी कोई वश नहीं चल पाता ।९५।

अम्भोजिनीवनविहारविलासमेव
हंसस्य हन्ति नितरां कुपितो विधाता ।
न त्वस्य दुग्धजलभेदविधौ प्रसिद्धां
वैदग्ध्यकीर्तिमपहर्तुमसौ समर्थः ॥ १८॥

यदि विधाता क्रुद्ध होजाय तो वह कमलिनी वन में विलास करते हुए हंस को भले ही रोक दे, परन्तु उसके दूध और जल को पृथक्-पृथक् कर देने वाले चतुराई युक्त गुण को कौन छीन सकता है ? ।१८।

खल्वाटो दिवसेश्वरस्य किरणैः सन्तापितो मस्तके
वाञ्छन्देशमनातपं विधिवशात्तालस्य मूलं गतः ।
तत्रोच्चैर्महता फलेन पतता भग्नं सशब्दं शिरः
प्रायो गच्छति यत्र भाग्यरहितस्तत्रापदां भाजनम् ॥ ९१॥

गंजा मनुष्य सूर्य के ताप से शिर को बचाने के लिए छाया-मय तालवृक्ष के नीचे आया और वहां उस वृक्ष से एक बड़ा फल गिरने के कारण उसका शिर फट गया। इस प्रकार भाग्यहीन पुरुष जहाँ-जहाँ जाता है, विपत्ति भी वहीं-वहीं (उसके पीछे-पीछे) जाती है ।९१।

नैवाकृतिः फलति नैव कुलं न शीलं
विद्यापि नैव न च यत्नकृतापि सेवा ।
भाग्यानि पूर्वतपसा खलु सञ्चितानि
काले फलन्ति पुरुषस्य यथैव वृक्षाः ॥ ९७॥

फल देने में न तो सुन्दर आकृति ही उपयोगी है और न कुल, शील, विद्या अथवा परिश्रमपूर्वक की गई सेवा, वरन् पूर्व जन्म में किये गये तप से सिंचित कर्म ही समय प्राप्त होने पर वृक्ष के समान फल देते हैं ।९७।

ऐश्वर्यस्य विभूषणं सुजनता शौर्यस्य वाक्संयमो
ज्ञानस्योपशमः श्रुतस्य विनयो वित्तस्य पात्रे व्ययः ।
अक्रोधस्तपसः क्षमा प्रभवितुर्धर्मस्य निर्व्याजता
सर्वेषामपि सर्वकारणमिदं शीलं परं भूषणम् ॥ ८३॥

ऐश्वर्य का भूषण सुजनता, शौर्य का भूषण वाक् संयम, ज्ञान की शोभा शान्ति, शास्त्र की शोभा विनय, धन की शोभा सत्पात्र को दान, तप की शोभा अक्रोध, प्रभुत्व की शोभा क्षमा, धर्म की शोभा कपट-रहितता और अन्य सभी गुणों का कारण-रूप भूषण शील ही है ।८३।

एते सत्पुरुषाः परार्थघटकाः स्वार्थं परित्यज्य ये
सामान्यास्तु परार्थमुद्यमभृतः स्वार्थाविरोधेन ये ।
तेऽमी मानवराक्षसाः परहितं स्वार्थाय विघ्नन्ति ये
ये विघ्नन्ति निरर्थकं परहितं ते के न जानीमहे ॥ ७५॥

सज्जन पुरुष अपना कार्य छोड़ कर भी पराये कार्य में तत्पर रहते हैं, इनमें जो सामान्य पुरुष हैं वे अपने कार्य में लगे रह कर पराया हित साधन करते हैं। परन्तु जो अपने लाभ के लिए पराया कार्य बिगाड़ देते हैं, वे मनुष्य होते हुए भी राक्षस हैं और जो अकारण ही किसी दूसरे के कार्य को बिगाड़ देते हैं, उन्हें क्या कहना चाहिए, यह मैं नहीं जानता ।७५।

नेता यस्य बृहस्पतिः प्रहरणं वज्रं सुराः सैनिकाः
स्वर्गो दुर्गमनुग्रहः खलु हरेरैरावतो वारणः ।
इत्यैश्वर्यबलान्वितोऽपि बलभिद्भग्नः परैः सङ्गरे
तद्व्यक्तं ननु दैवमेव शरणं धिग्धिग्वृथा पौरुषम् ॥

जिसके नेता (मन्त्रदाता) बृहस्पति, वज्र जिसका आयुध, देवगण सैनिक, स्वर्ग दुर्ग और ऐरावत जिसका हाथी है, ऐसे सब प्रकार के ऐश्वर्य और बल से समन्वित होकर भी रण में शत्रु से हारता रहता है, इससे यही मानना होता है कि दैव ही शरण लेने योग्य है और वृथा पौरुष को धिक्कार है ।८९।

दानं भोगो नाशस्तिस्रो गतयो भवन्ति वित्तस्य ।
यो न ददाति न भुङ्क्ते तस्य तृतीया गतिर्भवति ॥ ४३॥

धन की तीन गति हैं—दान, भोग और नाश। धन का दान या भोग न किया जाय तो उसकी तीसरी गति ही हुआ करती है।४३।

यस्यास्ति वित्तं स नरः कुलीनः
स पण्डितः स श्रुतवान् गुणज्ञः ।
स एव वक्ता स च दर्शनीयः
सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्ति ॥ ४१॥

जिसके पास धन है, वही पुरुष कुलीन है, वही पण्डित है, वही विद्वान् और गुणज्ञ है, वही वक्ता और वही दर्शनीय है। अभिप्राय यह है कि सभी गुण स्वर्णरूपी धन के आश्रित हैं।४१।

सन्त्यन्येऽपि बृहस्पतिप्रभृतयः सम्भाविताः पञ्चषाः
तान् प्रत्येष विशेषविक्रमरुची राहुर्न वैरायते ।
द्वावेव ग्रसते दिवाकरनिशाप्राणेश्वरौ भास्वरौ
भ्रातः पर्वणि पश्य दानवपतिः शीर्षावशेषाकृतिः ॥ ३४॥

आकाश में बृहस्पति और उसके समान तेजस्वी पाँच, छः ग्रह और भी हैं, परन्तु अपने विशेष पराक्रम में रुचि रखने वाला

शिरमात्र शेष राहु उनसे वैर न करके परम तेजस्वी सूर्य चन्द्र को ही (क्रमशः) पूर्णिमा और अमावस के समय ग्रास करता है ।३४।

जयन्ति ते सुकृतिनः रससिद्धाः कवीश्वराः ।
नास्ति येषां यशःकाये जरामरणजं भयम् ॥ २४॥

श्रेष्ठ कर्म वाले और सभी रसों में सिद्ध वे कवीश्वर ही सर्व-जेता हैं, जिन्हें यश, काया, वृद्धावस्था और मृत्यु का भी भय नहीं है ।२४।

यद्धात्रा निजभालपट्टलिखितं स्तोकं महद्वा धनं
तत् प्राप्नोति मरुस्थलेऽपि नितरां मेरौ ततो नाधिकम् ।
तद्धीरो भव वित्तवत्सु कृपणां वृत्तिं वृथा मा कृथाः
कूपे पश्य पयोनिधावपि घटो गृह्णाति तुल्यं जलम् ॥ ४९॥

विधाता ने भाग्य में अल्प या अधिक जितना भी धन लिखा है, वह तो उसे मरुस्थल में भी प्राप्त होता ही है और उससे अधिक सुमेरु पर्वत पर जाने से भी नहीं मिल सकता। इसलिए धैर्य पूर्वक जो है उसी पर सन्तोष करो और किसी धनवान के समक्ष दीनता व्यक्त न करो। देखो, घड़े को कूप में डालो या समुद्र में, जल तो एक समान ही भरेगा।४९।

लाङ्गुलचालनमधश्चरणावपातं
भूमौ निपत्य वदनोदरदर्शनं च ।
श्वा पिण्डदस्य कुरुते गजपुङ्गवस्तु
धीरं विलोकयति चाटुशतैश्च भुङ्क्ते ॥ ३१॥

कुत्ता भोजनदाता के आगे पूँछ हिलाकर और भूमि पर लोट-पोट होकर अपनी दीनता प्रदर्शित करता है, परन्तु हाथी अपने भोजनदाता को गंभीरता से देख कर सैकड़ों वार मनाने पर ही भोजन करता है ।३१।

राजन् दुधुक्षसि यदि क्षितिधेनुमेतां
तेनाद्य वत्समिव लोकममुं पुषाण ।
तस्मिंश्च सम्यगनिशं परिपोष्यमाणे
नानाफलैः फलति कल्पलतेव भूमिः ॥ ४६॥

हे राजन् ! यदि पृथिवी रूपी गाय का दोहन करना हो तो प्रजा का पालन बछड़े के समान करो । क्योंकि भले प्रकार पालन की हुई पृथिवी कल्पवृक्ष के समान फल देने वाली होती है ।४६।

सत्यानृता च परुषा प्रियवादिनी च
हिंस्रा दयालुरपि चार्थपरा वदान्या ।
नित्यव्यया प्रचुरनित्यधनागमा च
वाराङ्गनेव नृपनीतिरनेकरुपा ॥ ४७॥

कहीं सत्य, कहीं झूँठ, कहीं कठोर, कहीं मधुर बोलने वाली, कहीं घातक, कहीं दयालु, कहीं कृपण, कहीं उदार, कहीं प्रचुर धन का व्यय करने वाली और कहीं अधिक धन-संचय करने वाली यह राजनीति वेश्या के समान अनेक रूप वाली होती है ।४७।

अकरुणत्वमकारणविग्रहः परधने परयोषिति च स्पृहा ।
सुजनबन्धुजनेष्वसहिष्णुता प्रकृतिसिद्धमिदं हि दुरात्मनाम् ॥ ५२॥

करुणाहीनता, अकारण विग्रह, परधन और परनारी की कामना, स्वजनों और मित्रों के प्रति असहिष्णुता, दुरात्माओं के यह स्वभाव सिद्ध लक्षण हैं ।५२।

विपदि धैर्यमथाभ्युदये क्षमा सदसी वाक्पटुता युधि विक्रमः ।
यशसि चाभिरुचिर्व्यसनं श्रुतौ प्रकृतिसिद्धमिदं हि महात्मनाम् ॥ ६३॥

आरम्भगुर्वी क्षयिणी क्रमेण
लघ्वी पुरा वृद्धिमती च पश्चात् ।
दिनस्य पूर्वार्धपरार्धभिन्ना
छायेव मैत्री खलसज्जनानाम् ॥ ६०॥

जैसे दिवस के प्रारम्भ में घनी छाया रहती है और धीरे-धीरे घटती जाती है, फिर दिवस के उत्तरार्ध के अन्त में छाया स्वल्प रहती और धीरे-धीरे बढ़ती जाती है, वैसे ही दुष्ट और सज्जन की मित्रता होती है ।६०।

यदचेतनोऽपि पादैः स्पृष्टः प्रज्वलति सवितुरिनकान्तः ।
तत्तेजस्वी पुरुषः परकृतनिकृतिं कथं सहते ॥ ३७॥

सूर्यकान्त मणि अचेतन होने पर सूर्य की रश्मियों के ताप से प्रज्वलित होजाती है तो सचेतन तेजस्वी पुरुष दूसरों के द्वारा किये जाने वाले निरादर को कैसे सहन कर सकता है ? ।३७।

आज्ञा कीर्तिः पालनं ब्राह्मणानां
दानं भोगः मित्रसंरक्षणं च ।
येषामेते षड्गुणा न प्रवृताः
कोऽर्थस्तेषां पार्थिवोपाश्रयेण ॥ ४८॥

विद्या, कीर्ति, ब्राह्मणों का पालन, दान देना, भोग करना और मित्र की रक्षा, जिसमें यह छः गुण नहीं, उस राजा के आश्रय से क्या लाभ है ? ।४८।

उद्भासिताखिलखलस्य विश्रुङ्खलस्य
प्राग्जातविस्तृतनिजाधमकर्मवृत्तेः ।
दैवादवाप्तविभवस्य गुणद्विषोऽस्य
नीचस्य गोचरगतैः सुखमाप्यते कैः ॥ ५९॥

जिस की दुष्टता का ज्ञान सभी को होगया हो, जिसके पूर्वजन्म के नीचकर्म इस जन्म में प्रकट हो रहे हों, जो दैव-वशात् धनवान होगया हो और जिसे श्रेष्ठ गुणों से द्वेष हो, ऐसे दुष्ट मनुष्य के सामने जाकर कौन सुख प्राप्त कर सकता है ।५९।

विद्या नाम नरस्य रूपमधिकं प्रच्छन्नगुप्तं धनं
विद्या भोगकरी यशस्सुखकरी विद्या गुरूणां गुरुः ।
विद्या बन्धुजनो विदेशगमने विद्या परा देवता
विद्या राजसु पूजिता न तु धनं विद्याविहीनः पशुः ॥ २०॥

विद्या ही मनुष्य का सुन्दर रूप और गुप्त धन है, विद्या ही भोग, यश और सुख को प्राप्त कराने वाली है, विद्या ही गुरुओं की भी गुरु है, विद्या ही विदेश-गमन में बन्धु स्वरूप होती है, विद्या ही परा देवता है और विद्या ही राजाओं के द्वारा भी पूजी जाती है, धन नहीं पूजा जाता। इसलिए विद्याविहीन मनुष्य पशु ही है।२०।

दाक्षिण्यं स्वजने दया परजने शाठ्यं सदा दुर्जने
प्रीतिः साधुजने नयो नृपजने विद्वज्जने चार्जवम् ।
शौर्यं शत्रुजने क्षमा गुरुजने कान्ताजने धृष्टता
ये चैवं पुरुषाः कलासु कुशलास्तेष्वेव लोकस्थितिः ॥ २२॥

स्वजनों पर उदारता, परिजनों पर दया, दुर्जनों से शठता, साधुओं से प्रीति, राजपुरुषों से नीति, विद्वानों से सरलता, शत्रुओं से शूरता, गुरुजनों से सहनशीलता, स्त्रियों से धृष्टता आदि लौकिक व्यवहार में कुशल पुरुषों से ही लोक की स्थिति है ।२२।

करे श्लाघ्यस्त्यागः शिरसि गुरुपादप्रणयिता
मुखे सत्या वाणी विजयिभुजयोर्वीर्यमतुलम् ।
हृदि स्वच्छा वृत्तिः श्रुतमधिगतं च श्रवणयो-
र्विनाप्यैश्वर्येण प्रकृतिमहतां मण्डनमिदम् ॥ ६५॥

हाथों की प्रशंसा दान में है, शिर की शोभा गुरुजन के चरणों में प्रणाम करने में है, मुख की शोभा सत्य बोलने में और भुजाओं की शोभा अपार बल प्रदर्शित करने में है। हृदय की श्लाघा स्वच्छता में और कानों की शोभा शास्त्र-श्रवण में है, सज्जनों के लिए यह सब ऐश्वर्य और महान् भूषण हैं ।६५।

परिवर्तिनि संसारे मृतः को वा न जायते ॥
स जातो येन जातेन याति वंशः समुन्नतिम् ॥ ३२॥

इस परिवर्तनशील संसार में मरण को कौन नहीं प्राप्त होता और कौन नहीं जन्म लेता ? परन्तु जिसके द्वारा वंश की वृद्धि हो, उसी का जन्म लेना सार्थक है ।३२।

सिंहःशिशुरपि निपतति मदमलिनकपोलभित्तिषु गजेषु ।
प्रकृतिरियं सत्ववतां न खलु वयसस्तेजसो हेतुः ॥ ३८॥

सिंह का शिशु भी मदोन्मत्त हाथी पर आक्रमण कर देता है, क्योंकि शक्तिशालियों का स्वभाव ही ऐसा होता है। तेजस्विता को प्रदर्शित करने में वय बाधा का कारण कदापि नहीं बन सकती।३८।